

आर्थिक संकट से जूझता संयुक्त राष्ट्र

राष्ट्रीय
उपहार
14-6-96

पिछले एक वर्ष से संयुक्त राष्ट्र महासचिव बुतरस घाली सभी सदस्य देशों को इस विश्व पंचायत के घोर वित्तीय संकट की ओर बार-बार सचेत कर रहे हैं, लेकिन किसी भी देश ने उनकी बात को गंभीरता से नहीं लिया। सबसे हल्के ढंग से जिस देश ने लिया वह है अमरीका और यह भी एक विडंबना ही है कि उसी की बढौलत संयुक्त राष्ट्र की सारी एजेंसियां काम करती हैं। उसकी मुख्य वजह यह है कि अमरीका संयुक्त राष्ट्र को सबसे ज्यादा अनुदान देता है और इसलिए संयुक्त राष्ट्र में अमरीका की तृती बोतली है। पर बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह है कि पिछले वर्ष जब पूरे संसार में संयुक्त राष्ट्र के स्थापना की 50वीं वर्ष गांठ की चर्चा थी उस समय श्री घाली चारों तरफ धूम-धूमकर आर्थिक बदहाली का रोना रो रहे थे और खजाने में इतना भी पैसा नहीं था कि वर्षगांठ समारोह धूमधाम से मनाया जाए। कैसा लगता है कि जब एक ओर वर्षगांठ समारोह के आयोजन का महौल हो और दूसरी ओर इतने बड़े विश्व संगठन के बारे में यह चर्चा हो कि अगर इसके वित्तीय ढांचे को चरमराने से नहीं रोका गया तो संयुक्त राष्ट्र का अस्तित्व में बने रहना कठिन हो जाएगा। यही कहानी उसके कई दिवस समारोह में भी इस वर्ष दोहराई गयी।

आज हालत यह है कि संयुक्त राष्ट्र के मुख्य वित्त अधिकारी जोसेफ कोनर को साफ-साफ कह देना पड़ा है कि अब अगर सदस्य देशों ने अपने बकाये का भुगतान शीघ्र नहीं किया तो वह दिन करीब है जब संयुक्त राष्ट्र के कोष में अपने कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसे नहीं होंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन, अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन, यूनेस्को और संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी आयुक्त के कार्यालयों के कामकाज यूं भी अर्थाभाव के कारण लचर ढंग से चल रहे हैं, जबकि अमरीका के कहने पर बड़ी संख्या में कर्मचारियों की छंटनी की गयी है। अमरीका के सबसे बड़े अनुदानदाता होने के कारण सबसे ज्यादा बकाया भी अमरीका के ही पास है और हर किस्त देने से पहले धौंस देने के अंदाज में अमरीका सुझाव सलाह देने से बाज नहीं आता।

साल भर से अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन धमकी दे रहे हैं कि संयुक्त राष्ट्र का खर्च कम किया जाए, वरना इतने विशाल जहाज का खर्च चलाना संभव नहीं हो जाएगा और वे अपने अनुदान में कटौती करते जाएंगे। जबकि घाली ने 1992 से ही अपने संगठन में आर्थिक सुधार के लिए अभियान छेड़ रखा है। 1992 में संयुक्त राष्ट्र के जेनेवा कार्यालय में एक बैठक के बाद सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा कि इस कार्यालय के हजारों कर्मचारियों के पास करने के लिए कुछ नहीं है और उनके वेतन व अन्य सुविधाओं पर किया जा रहा

खर्चा फिजूल है। जेनेवा के अधिकारियों को यह सुनकर बड़ा धक्का लगा, लेकिन वे सब समझ रहे थे कि दिन-ब-दिन बिगड़ती आर्थिक हालत के कारण महासचिव को ऐसा बोलना पड़ रहा है, इसलिए कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई।

1945 में सिर्फ 50 देशों को लेकर शुरू किये गये संयुक्त राष्ट्र के कर्मचारियों की संख्या उस समय 150 थी और आज सिर्फ न्यूयॉर्क स्थित मुख्य कार्यालय में ही 15,000 कर्मचारी कार्यरत हैं। कुल कर्मचारी करीब 54 हजार हैं। सदस्य संख्या भी बढ़कर 185 हो गयी है। लेकिन जैसे-जैसे यह संगठन विशाल होता जा रहा है, इसकी प्रासंगिकता पर उंगलियां उठने लगी हैं। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना एक सशक्त निकाय के रूप में मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए की गयी थी, लेकिन पिछले 50 वर्षों में शांति प्रयासों के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र का खोखलापन उजागर हो चुका है।



हमारे पास ऐसे उदाहरणों का लंबा फेहरिस्त है जब यह विश्व संगठन कुल मिलाकर अमरीका और उसके पिछलगू पश्चिमी देशों की कठपुतली बनकर रह गया और बाकी सदस्य देशों की कुछ नहीं चल पायी। अमरीकी रणनीति के तहत संयुक्त राष्ट्र को इतना मजबूत कभी बनने ही नहीं दिया गया कि इसकी किसी भी अंतरराष्ट्रीय मामले में निर्णायक भूमिका हो और विश्व में अपनी दादागिरी कायम रखने के लिए जब चाहे तब इस्तेमाल किया जा सके। इसक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने अमरीका को खुली चुनौती देते हुए कुवैत पर कब्जा कर लिया तो अमरीका ने इराक के खिलाफ जंग छेड़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र को अपने पक्ष में कर लिया और ठीक इसका उल्टा इस्तेमाल का साथ देने के लिए अमरीका ने संयुक्त राष्ट्र के सारे नियमों व आदर्शों को धता बता दिया। सब जानते हैं कि सिर्फ अमरीकी वीटो के कारण संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा सर्वसम्मति से पारित फिलिस्तीनियों की जमीन मुक्त कराने से सम्बन्धित प्रस्ताव का कार्यान्वयन नहीं हो सका।

वास्तव में संयुक्त राष्ट्र का गठन ही दोषपूर्ण

ढंग से हुआ इसलिए आज भी विश्व स्तर पर इसकी छवि उतनी अच्छी नहीं है जितनी होनी चाहिए। वीटो का अधिकार और सुरक्षा परिषद की सदस्यता में जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ करते हुए ताकतवर देशों ने मनमानी की जिसे वह आज 50 वर्ष के बाद बदलती परिस्थितियों के मद्देनजर भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं। सुरक्षा परिषद की सदस्यता के लिए भारत की गुहार बार-बार अनुसूची की जा रही है और जापान के बारे में अमरीका विचार कर रहा है, क्योंकि उससे अमरीका के व्यापारिक हित जुड़े हैं।

शांति स्थापित करने के लिए सैनिक भेज दिये जाते हैं, जो अपनी जान भी नहीं बचा पाते और उन्हें वापस लौटना पड़ता है। सोमालिया और रवांडा इसका ताजा सबूत है। इसका कारण है संयुक्त राष्ट्र शांति बलों की कमजोरी और इनके प्रति अविश्वास।

मदद पर ही टिकी है। ये किशतें पांच वर्षों में देय होंगी।

हार-थककर बुतरस घाली ने आर्थिक संकट पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाने का ऐलान कर दिया है। उसके पहले खर्च में कटौती के लिए अपनी ओर से वह हर संभव कदम उठा चुके हैं। राजनयिकों और विशेषज्ञों के यात्रा व अन्य भत्तों में कटौती कर दी गयी है। खरीद, सम्मेलनों और देर रात तक चलने वाली बैठकों में कमी कर दी गयी है। कोनर के मुताबिक इन कटौतियों से दिसम्बर 1995 तक करीब तीन करोड़ डॉलर की बचत की गयी, लेकिन उसके बावजूद सदस्य देशों का 1996 के जनवरी में अद्यतन भुगतान कर देने का वायदा पूरा नहीं हो पा रहा है। संयुक्त राष्ट्र के कुल बजट का 25 प्रतिशत अमरीका देता है, इसलिए अमरीका का हाथ पैर समेट लेना संयुक्त राष्ट्र अधिकारियों के लिए स्वाभाविक रूप से चिंता की बात हो जाती है। कोनर को इस बात का दुख है कि शांति मिशनों के लिए निर्धारित रकम 350 अरब डॉलर में से लेकर अन्य खर्चों के लिए राशि देनी पड़ी है और शांति मिशन अब शीघ्र ही ठप होने की स्थिति में आ जाएगा, फिर उसके बाद संयुक्त राष्ट्र की उपयोगिता क्या रह जाएगी।

बुतरस घाली ने इस बात के लिए अफसोस जाहिर किया है कि प्रक्षेपास्त्रों, बारूदी सुरंगों और परमाणु हथियारों पर बेहिसाब खर्च करने वाले बड़े औद्योगिक देश नेक कार्यों के लिए बने संयुक्त राष्ट्र के धराशायी होने का इंतजाम कर रहे हैं। इस वर्ष मार्च-अप्रैल में जेनेवा में संपन्न सम्मेलन का संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त सादाको ओगाता को बहुत छोटे पैमाने पर आयोजन करना पड़ा और उनको चिंता है कि 118 देशों में कार्यरत पांच हजार कर्मचारी युद्ध की वजह से विस्थापित शरणार्थियों के जीवनयापन का खर्च कहां से जुटा पाएंगे। जेनेवा में प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र के करीब 300 सम्मेलन होते हैं, लेकिन पिछले तीन वर्षों से सम्मेलनों की संख्या लगातार घटती गयी है।

सबसे बुरी स्थिति है विश्व स्वास्थ्य संगठन की। इसके अध्यक्ष जापान के हिरोशी नकाजीमा ने 1996-97 के बजट में नौ प्रतिशत बढ़ोतरी का आग्रह किया जिसे किसी भी देश ने गंभीरता से नहीं लिया। इसके चलते एड्स और मलेरिया जैसी जानलेवा बीमारियों से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निजात पाने में दिक्कत आ रही है।

1984 में अमरीका और ब्रिटेन द्वारा यूनेस्को से अपने को अलग कर लेने से इस एजेंसी के अधिकांश कार्यक्रम बंद हैं। दूसरी ओर बाल श्रम उन्मूलन का बीड़ा उठाने वाला श्रम संगठन अपने 1800 कर्मचारियों को नियमित वेतन देने को लेकर चिन्तित है।

पर अब तो इस अभियान पर भी संकट है, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र का सबसे ज्यादा खर्च सैनिकों पर है, जो सालाना 3.3 अरब से भी अधिक हो जाता है और आज आर्थिक दिवालियापन के कगार पर खड़ा संयुक्तराष्ट्र अपना शांति अभियान कायम रखने में अक्षम साबित हो रहा है।

क्लिंटन से बुतरस घाली ने कई बार अपना अंशदान देने का आग्रह किया और उनके आश्वासन पर ही 1996 को 'अंतरराष्ट्रीय गरीबी उन्मूलन वर्ष' घोषित कर दिया, लेकिन अब इस कार्यक्रम के खटाई में पड़ने की संभावना लग रही है। 70 सदस्य देशों पर बकाये की रकम तीन अरब डॉलर से ज्यादा होती है, जिसमें अकेले अमरीका को 1.6 अरब डॉलर का भुगतान करना है। मुख्य वित्त अधिकारी के मुताबिक समय पर अनुदान की राशि देने वालों में गरीब और विकासशील देशों की संख्या ज्यादा है। अमरीका इतने आग्रह के बावजूद पांच किशतों में अनुदान की राशि देने को राजी हुआ है और पहली किशत भी जुलाई से पहले मिलने की उम्मीद नहीं है, जबकि सबसे ज्यादा खर्च वाला गरीबी उन्मूलन अभियान की सफलता अमरीकी